'मैं शिक्षक रहा हूँ' इस बात का मुझे फ़ख्र है

फूलचन्द्र जैन से गुरबचन सिंह की बातचीत

यह साक्षात्कार बुन्देलखण्ड के कस्बाई सरकारी विद्यालयों में तक़रीबन तीन दशक तक अध्यापक और प्रधान अध्यापक के रूप में कार्य करने वाले शिक्षक फूलचन्द्र जैन के शैक्षिक अनुभवों का विवरण प्रस्तुत करता है। इस बातचीत में हम शिक्षक की दृष्टि से बचपन, सीखने-पढ़ने के तरीक़ों और प्रभावी शिक्षक-प्रशिक्षण की समस्याओं व सुझावों और अच्छे शिक्षक की जवाबदेही जैसे मसलों को देख-समझ पाते हैं। सं.

सवाल : आपने तक़रीबन 40 साल सरकारी स्कूलों में छोटे बच्चों को सिखाने-पढ़ाने का काम किया है। लेकिन जब आप बच्चे थे, यानी पचास के दशक के शुरुआती वर्षों में, आपके अपने बचपन और पढ़ाई-लिखाई के अनुभव क्या रहे, इसके बारे में कुछ बताएँ?

फूलचन्द्र : मुझे याद है कि मेरा पूरा बचपन अपने और मामा के गाँव में ही बीता है। उस समय माँ-बाप पर हमारी पढ़ाई-लिखाई को लेकर कोई तनाव नहीं था, इसलिए उस ज़माने के बच्चे आज की तुलना में बहुत ज़्यादा आज़ाद रहते थे। परिवार साझा थे, फिर भी रोका-टोकी बहुत कम थी। ननिहाल में माँ के साथ आना-जाना लगा रहता था। वहाँ भी दिनभर खेलना-कूदना, ऊधम मचाना था। दोनों जगह, जगह की भरमार थी। गली में खेलो, चबूतरों पर खेलो, आँगन में खेलो, घर में छुपो या बाहर मैदान में, कहीं कोई कुछ कहने वाला नहीं था। माँ-बाप को सुबह से शाम तक घर के और रोज़गार के कामों से फ़ुर्सत ही नहीं थी।

सवाल : आपने अपने बचपन का जो विवरण दिया है वह ग्रामीण जीवन के बहुत ही उन्मुक्त और आज़ाद बचपन का दृश्य प्रस्तुत करता है। आपकी आज के बचपन के बारे में क्या राय है और यह किस मायने में आपके ज़माने के बचपन से फ़र्क़ है?

फूलचन्द्र : आज तो बचपन रह ही नहीं गया है। हमारे बचपन में संयुक्त परिवार थे, इस कारण बच्चे की परवरिश के लिए परिवार के अन्य सदस्य उपलब्ध होते थे। वे उन्हें भरपूर प्यार देते थे। प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से बच्चों की देखभाल करते थे और उन्हें स्वतंत्र भी छोड़ देते थे। बच्चे अपने मन से बहुत सारे काम कर लेते थे, चीज़ें उठाकर इधर-उधर रख सकते थे, अपने हम उम्र साथियों के साथ बाहर पूरी आज़ादी से खेलकूद सकते थे। किसी तरह की बन्दिशें नहीं थीं। पारिवारिक व्यस्तता के चलते बच्चों पर ध्यान भी कम रहता था कि वे क्या कर रहे हैं और क्या नहीं?

आज मोबाइल फ़ोन और टेलीविज़न माता-पिता के रास्ते बचपन में घुस आए हैं। आउटडोर गेम अधिकांश बच्चों के जीवन से विदा हो गए हैं। आज तीन साल का बच्चा होमवर्क के तनाव में बड़ा हो रहा है। बच्चे माँ-बाप से प्रोजेक्ट कार्य कराने की चिन्ता में घुले जा रहे हैं। पढ़ाई में परिवार और मुहल्ले के दूसरे हमउम्र बच्चों से तुलना ने उनसे बचपन की खुशियाँ छीन ली हैं।

आज बचपन की अवस्था और बाल समुदाय एक बड़े बाज़ार के रूप में उभर रहा है। आज माता-पिता बच्चों के माध्यम से अपनी महत्त्वकांक्षाएँ पूरी करना चाहते हैं और उन्हें ज़िम्मेदारी निभाने के लिए समय से पहले तैयार होते देखना चाहते हैं। यही वजह है आज के बचपन में स्वतंत्र रूप से खेलने, कुछ बनाने, गढ़ने, तोड़ने और रचने की जगह लगभग ख़त्म हो गई है, और इनकी जगह दबाव, तनाव, डर और असुरक्षा ने ली है।

सवाल : यह तो हुई बचपन की बात, अपने शुरुआती स्कूली जीवन, पढ़ाई-लिखाई के बारे में कुछ ऐसा बताएँ जिससे उस ज़माने की शिक्षा की एक झलक मिल सके ?

फूलचन्द्र : मैं 1954 में आठ साल की उमर में अपने गाँव के सरकारी स्कूल में पहली कक्षा में भरती हुआ। उस ज़माने में स्कूल के बस्ते में स्लेट-बत्ती और आठ पन्ने की पहाड़े की किताब हुआ करती थी। स्कूल जाने से पहले और बाद में सिर्फ़ खेलना होता था, पूरी पढ़ाई स्कूल में ही हो जाती थी।

जब मैं स्कूल में भरती हुआ उस समय वहाँ मात्र एक शिक्षक थे जिनकी उम्र तक़रीबन बीस-इक्कीस साल थी। वे कक्षा आठ पास थे और उनको लगभग 55-60 रुपए पगार मिलती थी। वे गाँव में ही रहते थे, एक कमरे के कच्चे मकान में। अपनी दाल-रोटी ख़ुद बनाते थे। कुछ माता-पिता अपने बच्चे का नाम पहली बार स्कूल में लिखवाने पर मास्साब को 'सिद्धा' यानी आटा, दाल, नमक, मिर्च, हल्दी, धनिया एक थाली में रखकर घर पर दे आते थे। यह एक तरह का शाला में बच्चे के प्रवेश का संस्कार हुआ करता था।

उस समय स्कूल में कक्षा एक से पाँच तक कुल 15 से 20 बच्चे रहे होंगे। हर कक्षा में चार या पाँच बच्चे। ब्राह्मण, ठाकुर, वैश्य और किसानों के बच्चे एक लाइन में और हरिजन बच्चे दूसरी लाइन में ज़मीन पर बैठते थे।

हम सब बच्चों के पास काले पत्थर की स्लेटें थीं। उसपर बत्ती से लिखा जाता था। कक्षा- एक में 'पहाड़िया' की आठ पन्नों की एक किताब, स्लेट और बत्ती बस्ते में होती थी। 'पहाड़िया' में वर्णमाला, गिनती, पौउआ, अद्दा, पौना, सवैया, डेवढ़िया के पहाड़े और इकाई, दहाई, सैकड़ा छपे रहते थे, जिसकी नक़ल हम छात्र अपनी स्लेट पर सबक़ अनुसार उतारा करते थे। कुछ बच्चों की स्लेटें इतनी चिकनी और काली हुआ करती थीं कि उस पर लिखे वर्ण और अंक चिरौंजी जैसे दिखते थे। ऐसी लिखी हुई सारी स्लेटें मास्साब की एकमात्र टेबल पर एक के ऊपर एक कक्षावार रख दी जाती थीं। जाँचते समय मास्साब किसी एक कक्षा के सारे बच्चों को अपने पास बुलाते, सभी मास्साब की टेबल घेरकर खड़े हो जाते। बच्चा, मास्साब के कहने पर स्लेट से पढ़ता या मौखिक सुनाता। सही होने पर स्लेट पर सही का निशान लगाकर बच्चे को लौटा दी जाती। ग़लत होने पर कान उमेठा जाता या पीठ पर मुक्का पड़ता। कभी-कभी 'बुद्धि प्रकाश' यानी डण्डे का प्रयोग भी होता।

हम बच्चों में से कुछ की पत्थर की स्लेटें इतनी पुरानी थीं कि उनका इस्तेमाल उनके परिवार के अन्य बच्चे भी पहले कर चुके थे। अब बिना लकड़ी वाली चौखट की स्लेट को सम्भालकर रखना एक सांस्कृतिक काम था।

इण्टरवल में बच्चे अपने घर खाना खाने आते थे। खाना खाने की छुट्टी में मास्साब स्कूल में रहते थे। कभी स्कूल की पट्टी पर लेट जाते थे। बच्चों के शोरगुल से उनकी आँख खुलती थी। इण्टरवल के बाद कोई एक लड़का चिल्लाकर बारहखड़ी, गिनती या पहाड़े बोलता, शेष दोहराते और यह सिलसिला पूरी छुट्टी होने तक चलता था।

मास्साब की टेबल पर 'बुद्धि प्रकाश' यानी डण्डा विद्यालय की क्यारियों में लगे कपास के पौधों में से पतली सटक तुड़वाकर रखा जाता था। सटक हथेली पर पड़ती तो आह निकलकर

रह जाती। कितनी सटक पड़नी हैं, मास्साब ही जानते थे। पीटने का सिलसिला रोज़ाना का था। जो पिटाई से बच जाता उसका घमण्ड देखने लायक होता था। कुछ लड़के जिनका पिटना आज निश्चित होता था वे स्कूल आने से पहले अपनी हथेलियों पर नीबू का रस मलकर आते थे। मास्साब द्वारा मारी गई सटक का असर नीबू के लेप से कुछ बढ़ जाता था जिसे घर पर दिखाकर सहानुभूति बटोरने की जुगत रहती थी। परन्तु कोई भी अभिभावक अपने बच्चे के पिटने की शिकायत मास्साब से नहीं करता था। घर के बड़े लोग मास्साब से यह कहकर ज़रूर आते थे, "ऐसो करियो मास्साब के बच्चा दो आखर सीख ले, इसके लिए मार भी लगाना पड़े तो लगाइयो", "मांस-मांस तुमाओ, हड्डी हमाई।" मतलब मास्साब बच्चों को इतना पीट सकते हैं कि उनकी हड्डी भर न टूट जाए, मांस पर चोट सहन की जा सकती है। एक प्रकार से पढ़ाई की ख़ातिर बच्चों की पिटाई को सामाजिक स्वीकृति मिली हुई थी।

छठवीं में पढ़ने के लिए मुझे बड़ागाँव धसान नामक कस्बे की पूर्व माध्यमिक शाला में प्रवेश लेना था जो उस समय इस इलाक़े की एकमात्र पूर्व माध्यमिक शाला थी। मैंने बड़ागाँव में छठवीं में प्रवेश लिया। यह हमारे गाँव से पगडण्डी के रास्ते 6 किलोमीटर से ज़्यादा ही था। जुलाई और अप्रैल में स्कूल सुबह 7 से 12 बजे तक लगता था। आप ही सोच लीजिए कि सुबह 6 किलोमीटर पैदल चलकर, वह भी नंगे पाँव 7 बजे विद्यालय पहुँचना और 12 बजे छुट्टी होने पर पैदल घर वापिस आना कितनी मेहनत का काम रहा होगा। कल्पना कीजिए अप्रैल माह में 12 बजे की धूप में नंगे पाँव ततुरी यानी गरम पगडण्डी से घर आना! खाने के लिए रोटी-अचार, रोटी-गुड़ कपड़े में बाँधकर घर से ले जाते थे।

सवाल : आपने पचास के दशक के अपने छात्र जीवन का जो विवरण दिया है वह एक तरह से ग्रामीण समाज— जिसमें बच्चे और शिक्षक भी शामिल हैं— के अभाव और संघर्ष का जीवन प्रस्तुत करता है। आप आज पचास साल बाद भी ग्रामीण समाज और शिक्षा में क्या बदलाव देखते हैं?

फूलचन्द्र : बीते पचास सालों में प्रारम्भिक शिक्षा में बहुत सारे बदलाव हुए हैं। विशेष रूप से 1986 की नई शिक्षा नीति और ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड के माध्यम से स्कूलों में भौतिक सुविधाएँ और शिक्षकों की संख्या बढ़ी है। ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम और सर्व शिक्षा अभियान की परियोजनाएँ लागू होने से भी शिक्षकों की सोच में परिवर्तन आया है। निशुल्क गणवेश, निशुल्क पाठ्यपुस्तकें, मध्याह्न भोजन और वजीफ़ा मिलने से भी ग्रामीण बच्चों की शिक्षा में सुधार हुआ है, ख़ासकर नामांकन और उपस्थिति बढ़ी है। कुछ व्यवस्थाएँ भी सुधरी हैं।

लेकिन कुछ दुष्परिणाम भी सामने आए हैं। संविदा शिक्षकों की नियुक्ति से पहले के नियमित शिक्षकों के वेतन बढ़ने से उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। जिससे उन्होंने अपने आवास से ग्रामीण पदांकित शाला तक आने-जाने के लिए निजी वाहन की सुविधा जुटा ली है या उन्हें अन्य साधन उपलब्ध होने लगे हैं। इससे शिक्षकों ने पदांकित स्कूल के गाँव में रहना बन्द कर दिया है और अप-डाउन करने लगे हैं, जिससे शाला में पढ़ाई के घण्टे कम होने लगे हैं। गाँव में स्थाई रूप से न रहने से उनका लगाव भी बच्चों और स्थानीय समुदाय से धीरे-धीरे ख़त्म-सा होता जा रहा है। ग्रामवासियों के लिए शिक्षक अब एक तरह से बाहरी व्यक्ति हो गया है। सुदूर ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षक जैसे सम्माननीय और पढ़े-लिखे व्यक्ति के न रहने से गाँव में होने वाले बदलाव पर भी नकारात्मक असर हुआ है। शिक्षक और अभिभावकों के अपनेपन रिश्ते भी प्रभावित हुए हैं।

कक्षाओं में बच्चों की संख्या बढ़ने के साथ ही शिक्षक का बच्चों से मेल-मिलाप और घनिष्ठता भी कम हुई है। कक्षा और स्कूल के वातावरण में जो एक तरह की तसल्ली थी और शिक्षक व बच्चे अपने मन से काम करते थे उसकी जगह भी छीजती जा रही है।

सवाल : यह तो हुई सीखने–पढ़ने की बात। शिक्षकों की तैयारी में शिक्षक–प्रशिक्षण की महती भूमिका है। सत्तर के दशक में आपको जो सेवापूर्व प्रशिक्षण दिया गया उसका स्वरूप कैसा था? वह कितना उपयोगी था?

फूलचन्द्र : 1974 में मेरा चयन छात्र–अध्यापक के रूप में बीएड प्रशिक्षण के लिए किया गया था। यह हमारा सेवा पूर्व प्रशिक्षण था। उस ज़माने में अप्रशिक्षित सहायक शिक्षक, शिक्षक और व्याख्याता प्रशिक्षण लेने के लिए सरकारी खर्च पर भेजे जाते थे। मैं भी भेजा गया। प्रशिक्षण में सैद्धान्तिक और प्रायोगिक दोनों पक्ष थे। दोनों पक्षों में पढ़ाने वाले प्रशिक्षक थके हुए व समय काटने वाले लगे। उस समय उन्होंने कोई भी उपयुक्त शिक्षाशास्त्रीय रचना पढ़ने को प्रोत्साहित नहीं किया, न ही पाठ योजना में कोई नवाचार करने या नवाचार को प्रोत्साहित करने के लिए प्रेरित किया। इसलिए हम सभी शिक्षक अपने चुने हुए विषय अनुसार पिछले साल के प्रशिक्षणार्थियों की पाठ योजना की कॉपियाँ लेकर उनसे नक़ल कर पाठ योजना उतार लेते थे, जिन्हें हमारे विषय प्रशिक्षक सही का निशान लगाकर वापिस सौंप देते थे। इनसे हम प्रायोगिक पाठों के दौरान कक्षाओं में पढ़ाते थे। इस तरह प्रशिक्षण की औपचारिकता पूरी करके और परीक्षा पास करने के बाद फिर से नए विद्यालय में पदांकन कर दिया जाता था।

सवाल : आजकल भी शिक्षक–प्रशिक्षण को लेकर हमेशा बहुत सवाल उठाए जाते हैं, ख़ासकर प्रशिक्षण की प्रासंगिकता और गुणवत्ता को लेकर। यदि शिक्षण–प्रशिक्षण की प्रक्रिया में बदलाव करने का कोई मौक़ा आपको मिले, तो आप क्या बदलाव करना चाहेंगे?

फूलचन्द्र : मुझे शिक्षक–प्रशिक्षण की सबसे बड़ी कमज़ोरी यह लगती है कि यह परीक्षा केन्द्रित प्रशिक्षण पर ज़ोर देता है। जो दिया जाता है उसे प्रशिक्षण भी नहीं कहा जा सकता। वह एक प्रकार का शिक्षण ही होता है। जैसे स्कूल में शिक्षक बच्चों को पढ़ाता है बिलकुल वैसा ही। उसमें मुझे कभी भी बौद्धिक सन्तुष्टि नहीं मिली। 27–28 साल का नौजवान कुछ जानना चाहता हो और उसकी जिज्ञासा को शान्त करने के स्थान पर झिड़की मिले तो प्रतिभा कुन्द होगी ही। आज भी शिक्षक–प्रशिक्षण की भूमिका इतनी पुरानी और कमज़ोर है कि अन्य विज्ञानों से तुलना ही नहीं की जा सकती। नवाचारों के लिए न तो स्थान है, न समय, और न ही धैर्य।

अगर शिक्षक–प्रशिक्षण की प्रक्रिया में कोई बदलाव करने का मौक़ा मुझे मिले तो मैं इसके पहले शिक्षक चयन की प्रक्रिया में ही बदलाव लाना चाहूँगा। प्रशिक्षण को पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तक और केन्द्रीकृत परीक्षा प्रणाली के त्रिभुज से निकलना होगा। पाठ्यचर्या को पूरा करने के लिए पाठ्यपुस्तक की अनिवार्यता से निकलना होगा। पाठ्यपुस्तक की परिधि से बाहर आकर शिक्षकों में ज्ञान विकसित करने का सामर्थ्य पैदा करना होगा। इसके लिए प्रबुद्ध व क्षमतावान प्रशिक्षकों की ज़रूरत होगी। जब इस तरह का प्रशिक्षण ऊपर से नीचे की तरफ़ आना शुरू होगा तभी हम साक्षरता से शिक्षा की ओर बढ़ना शुरू करेंगे और तभी हम सही दिशा में बदलाव की बात सोच सकते हैं।

आप जानते ही हैं कि परीक्षा केन्द्रित शिक्षक–प्रशिक्षण, शिक्षक की स्वतंत्रता को घण्टियों में सीमित कर देता है। शिक्षक अपनी शिक्षण पद्धति की गति को अपने कालखण्ड के अनुरूप निर्धारित नहीं कर सकता। साथ ही शिक्षण के अतिरिक्त विद्यालय के अन्य कार्यों का बोझ उसकी कार्य क्षमता को सीमित कर देता है। एक शीर्षक या पाठ को पढ़ाने के लिए जितना समय शिक्षक को अपने लिए चाहिए उतना समय स्कूल की दिनचर्या उसे प्रदान नहीं करती। अगर उसे वांछित समय मिल जाए तो अगले पाठों को जब छात्र पढ़ेंगे तो उनके पास पहले पढ़े पाठों की पृष्ठभूमि होगी जिसके आधार पर वह अगले पाठ को ख़ुद समझने का प्रयास कर पाएँगे।

सवाल : तो आप यह कह रहे हैं कि परीक्षा केन्द्रित शिक्षक–प्रशिक्षण को बेहतर बनाने की बहुत सारी

चुनौतियाँ हैं। ऐसी परिस्थिति में औपचारिक शिक्षक–प्रशिक्षण के अलावा सेवा काल के दौरान शिक्षकों की क्षमता संवर्धन के और क्या–क्या तरीक़े हो सकते हैं ?

फूलचन्द्र : शिक्षकों की क्षमता संवर्धन के लिए संकुल और विकास खण्ड स्तर पर शिक्षा के विभिन्न विषयों पर प्रति माह एक या दो दिवसीय सुविचारित शिक्षा विमर्श आयोजित किए जा सकते हैं, जिसमें सभी शिक्षकों की तैयारी के साथ भागीदारी अनिवार्य हो। बच्चों को पढ़ाने के दौरान शिक्षक बच्चों के साथ मिलकर विभिन्न विषयों के कौशल विकसित करने वाली विषय आधारित परियोजनाओं / असाइंमेंट आदि की योजना बनाकर उसपर काम करें और अपने अनुभवों को अन्य शिक्षक साथियों के साथ साझा करें। ऐसे अवसर बनाए जाएँ कि हर शिक्षक माह में कम से कम दो ऐसी किताबें ज़रूर पढ़ें जिनसे उन्हें बच्चों को पढ़ाने में मदद मिल सके। स्कूल, संकुल और विकास खण्ड पुस्तकालयों को सम्पन्न बनाया जाए और शिक्षकों को पुस्तकें पढ़ने के लिए समय दिया जाए। क्षमता संवर्धन के प्रयास विभाग के साथ–साथ शिक्षकों द्वारा स्वयं भी किए जाने चाहिए क्योंकि यह उनकी ज़िम्मेदारी है कि वे अपने प्रोफेशन में हमेशा अपडेट रहें।

कुल मिलाकर यदि संकुल और विकास खण्ड केन्द्र, संसाधन और अकादमिक रूप से सक्षम बनें तो शिक्षकों के क्षमता संवर्धन के प्रयास लगातार चल सकते हैं।

सवाल : क्या आपको लगता है कि शिक्षक स्वयं अपनी क्षमता संवर्धन के लिए चिन्तित हों और प्रयास करें और क्या इसके लिए कोई नीतिगत या व्यवस्थागत पहल की जा सकती है जो इसके लिए उन्हें प्रोत्साहित करे या उन पर दबाव बनाए ?

फूलचन्द्र : हाँ, शिक्षकों को निरन्तर अपनी क़ाबिलीयत बढ़ाने के लिए लगातार कोशिश करना चाहिए क्योंकि यह उनकी पढ़ाने की ज़िम्मेदारी में शामिल है।

ऐसे कुछ प्रावधान शिक्षा विभाग में पहले से हैं हालाँकि इनमें कुछ ख़ामियाँ भी हैं और इनकी आलोचना भी होती है। जैसे किसी शिक्षक द्वारा सेवाकाल के दौरान पीएचडी करने पर उसे दो वेतन वृद्धियाँ देने की व्यवस्था है, लेकिन यह व्यवस्था कितनी पारदर्शी, ईमानदार और प्रभावशाली है इसको लेकर संशय है। इसी तरह हर साल प्रदेश में कुछ प्रतिभाशाली और क्षमतावान शिक्षकों को शिक्षक दिवस पर राज्य और राष्ट्रीय शिक्षक सम्मान दिए जाते हैं। राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त शिक्षक को पदोन्नति का प्रावधान है जबकि राज्य स्तरीय सम्मान प्राप्त व्यक्ति की वेतन वृद्धि का। लेकिन कई बार सम्मान के लिए चुने गए शिक्षकों की योग्यता पर सवाल उठाए जाते हैं।

मुझे याद है कि हमारे समय में एक और महत्त्वपूर्ण नीतिगत प्रावधान था जो अब ख़त्म कर दिया गया है वह था 'दक्षता अवरोध' (Efficiency bar)। शिक्षक लगातार अपनी क़ाबिलीयत बढ़ाते रहें और आचरण अच्छा बना रहे इसके लिए शिक्षक के वेतनमान में कुछ सालों की वेतन वृद्धि के उपरान्त 'दक्षता अवरोध' (Efficiency bar) का प्रावधान था। यह स्थिति आने पर शिक्षक के पिछले सालों के शिक्षकीय कार्य की उत्तमता के आधार पर वरिष्ठ अधिकारी द्वारा 'दक्षता अवरोध' को हटाने का प्रमाण–पत्र दिया जाता था, उसके बाद ही शिक्षक को अगली वेतन वृद्धि मिलती थी। लेकिन यह ज़्यादा समय चला नहीं। मुझे लगता है आज की परिस्थितियों में इसमें सकारात्मक व्यवहारिक पहलू जोड़ते हुए पुनः लागू करने से अच्छे परिणाम आ सकते हैं।

सवाल : आपकी राय में एक अच्छे शिक्षक को क्या–क्या करना चाहिए ?

फूलचन्द्र : मेरी नज़र में एक अच्छा शिक्षक वह है जो स्कूल में समय पर पहुँचे, पूरे समय वहाँ रहे, कक्षाओं में जाए, पढ़ाए और प्रयोग कराए, बच्चों से प्रेमपूर्ण व्यवहार करे। उपस्थिति रजिस्टर में अपने झूठे हस्ताक्षर न डाले। अपने

विषय की तैयारी करके कक्षा में जाए। उसे अध्ययन करते रहने की आदत हो। साथी शिक्षकों से पढ़ने-पढ़ाने पर बातचीत करने की आदत हो। सरकारी नौकरी में काम करने का घमण्ड न हो। स्कूल में पहनावा शालीन हो। ग्रामीणों के साथ सौहार्दपूर्ण चर्चा करे। अपने शैक्षणिक कार्य का स्वाभिमान हो। मैंने ऐसा अपने साथ पाया है। "मैं शिक्षक रहा हूँ" इस बात का मुझे फ़ख़्र है।

मैंने अपने आप को अपने स्कूल के प्रति हमेशा पूरी तरह से ज़िम्मेदार माना। वहाँ की तारीफ़ या बुराई के लिए मैं ज़िम्मेदार हूँ। गाँव के अन्य लोगों की तुलना में मेरी मासिक आय कई गुना ज़्यादा है। इसलिए मुझे गाँव के स्कूल और बच्चों के लिए ग्रामीणों से ज़्यादा काम करना चाहिए, ऐसा माना और करने की कोशिश की। इसका परिणाम यह हुआ कि ग्रामीणों की मेरे बारे में अच्छी राय बनना शुरू हो गई और जो लगातार विश्वास में बदलती गई। उपलब्ध परिस्थितियों में सबसे अच्छी कोशिश करना अच्छे शिक्षक का गुण होना चाहिए। समाज में हमारी ज़िम्मेदारी सबसे ज़्यादा है।

सवाल : क्या कुछ ऐसे कामों का ब्यौरा दे सकेंगे जिससे आपकी और आपके स्कूल की समुदाय में विश्वसनीयता बढ़ी हो और रिश्ता मजबूत हुआ हो ?

फूलचन्द्र : समुदाय और स्कूल के रिश्तों को घनिष्ठ करने के लिए राष्ट्रीय त्योहारों पर डिण्डोरी पिटवाकर सभी को स्कूल के कार्यक्रम में बुलाया जाता था। उन्हें स्कूल की गतिविधियों के बारे में बताया जाता था।

प्रभातफेरी के दौरान ग्रामवासी बच्चों को मिठाई वितरण के लिए एक-दो रुपए चन्दा देते थे जिसकी रसीद बनाकर तत्काल ग्रामवासियों को दी जाती थी और प्राप्त राशि शाला विकास निधि के खाते में जमा कर मिठाई वितरित की जाती थी। इससे लोगों में विश्वास पनपा।

हर साल सर्दियों में परिचितों और सहयोगियों के आर्थिक सहयोग से ज़रूरतमन्द बच्चों को स्वेटर दिए जाते थे। विद्यालय परिसर में बनी खदानों का समुदाय के सहयोग से समतलीकरण कराया गया, स्कूल परिसर में वृक्षारोपण और साफ़-सफ़ाई कराई जाती थी।

स्कूल परिसर में वालीबॉल का फ़ील्ड बनाकर गाँव के युवाओं के खेलने के लिए अवसर बनाए गए। वहाँ शाम को वालीबॉल खेलना एक नियमित गतिविधि थी। स्कूल द्वारा पहल करके विकास खण्ड स्तरीय सांस्कृतिक और साक्षरता आयोजनों से आस-पास के पूरे इलाक़े में स्कूल की साख और अलग पहचान बन गई।

मेरे द्वारा रोज़ाना नियमित साढ़े दस बजे स्कूल खोलने और साढ़े पाँच बजे स्कूल बन्द करने से स्टाफ़ और समुदाय पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ा।

सवाल : आख़िरी सवाल, एक सवाल के जवाब में आपने 5 सितम्बर शिक्षक दिवस पर शिक्षकों को राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय पुरस्कार दिए जाने की चर्चा की है। इनकी ज़रूरत, विश्वसनीयता और प्रक्रिया आदि को लेकर आपका क्या कहना है ?

फूलचन्द्र : देखिए, इन पुरस्कारों के लिए शिक्षक को ख़ुद आवेदन करना होता है, अपने काम के बारे में, अपनी योग्यता के बारे में प्रमाण जुटाकर देने होते हैं, इनको आप पुरस्कार क्यों कहते हैं? इन पुरस्कारों को पाने के लिए जो मापदण्ड और प्रक्रियाएँ अपनाई जाती हैं वह भी विश्वसनीय प्रतीत नहीं होती हैं, क्योंकि मेरे शिक्षा जगत में जिन शिक्षकों को यह पुरस्कार मिले हैं उनमें से किसी के लिए भी शिक्षकों और आम समुदाय की राय प्रश्न-चिह्न वाली ही रही है। इतना ही नहीं मैं ऐसे कई शिक्षकों को जानता हूँ जो इस तरह के पुरस्कार के सर्वथा हक़दार थे उन्होंने अपने सम्मान की ख़ातिर कभी भी आवेदन नहीं किया।

देखिए ऐसी प्रक्रिया अपनाई जा सकती है कि जिस गाँव और समाज में शिक्षक काम करता है उसके बारे में अपनी राय स्थानीय व्यक्ति, शिक्षक समुदाय, संकुल प्राचार्य, विकास खण्ड और ज़िला शिक्षा अधिकारी व कलेक्टर आदि

दें और इस राय को चयन के मापदण्ड में महत्त्व मिले। सम्मान पाने के लिए सम्मान योग्य शिक्षकों को ख़ुद आवेदन न करना पड़े।

सच तो यह है कि ग़लत शिक्षक को सम्मानित करने पर शिक्षक की गरिमा नहीं बढ़ती है बल्कि पुरस्कार की विश्वसनीयता को ठेस पहुँचती है।

सवाल : क्या आपको लगता है किसी ज़िले में हज़ारों शिक्षकों में से एक–दो शिक्षकों को राज्य स्तरीय या राष्ट्रीय सम्मान मिलने से अन्य शिक्षक प्रोत्साहित होते होंगे ?

फूलचन्द्र : सवाल संख्या का नहीं है कि कितने शिक्षकों को मिलता है। यदि सम्मान के लिए शिक्षकों का चयन क़ाबिलीयत के आधार पर पूरी निष्पक्षता, पारदर्शिता और शिक्षकों का सम्मान बरक़रार रखते हुए मज़बूत चयन प्रक्रिया से होता है और यदि सही मायने में योग्य शिक्षकों को मिलता है तो निश्चित ही अन्य शिक्षक प्रोत्साहित होंगे।

प्रश्नकर्ता : फूलचन्द्रजी, पत्रिका के लिए आपने समय दिया इसके लिए अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय द्वारा आपको आत्मीय धन्यवाद।

फूलचन्द्र जैन अवकाश प्राप्त शिक्षक हैं। उन्होंने मध्यप्रदेश के बुन्देलखण्ड अंचल के सरकारी स्कूलों में तीन दशक तक शिक्षक एवं प्रधानाध्यापक के रूप में कार्य किया। टीकमगढ़ में बाल साहित्य केन्द्र से उसकी स्थापना के समय से ही जुड़े रहे हैं।
सम्पर्क : सिद्धबाबा कॉलोनी, कमानी गेट, टीकमगढ़, म. प्र.। फोन 9425893827

गुरबचन सिंह पिछले आठ सालों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में काम कर रहे हैं। उन्हें प्रारम्भिक शिक्षा, स्कूली शिक्षा, वयस्क साक्षरता और बाल साहित्य के क्षेत्र में काम करने का साढ़े चार दशक का अनुभव है। वर्तमान में वे अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के अनुवाद पहल कार्यक्रम से जुड़े हुए हैं।
सम्पर्क : gurbachan.singh@azimpremjifounadation.org